International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 54-59

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 54-59
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 26-12-2014
Accepted: 12-01-2015

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत विभाग
के0ए0 (पीजी) कॉलेज कासगंज (उ0प्र0)

Correspondence
डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत विभाग
के0ए0 (पीजी) कॉलेज कासगंज (उ0प्र0)

ऋग्वेद के अपत्यार्थक रूपों का अर्थवैज्ञानिक मूल्यांकन

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

शोध सारांश
ऋग्वेद में प्राप्त हुये अपत्यार्थक शब्दों का सर्वप्रथम विभिन्न प्रत्ययों अ, इ, य, एय व आयन के आधार पर वर्गीकरण किया है। तदोपरान्त उन प्रत्ययों के आधार पर उनके अनन्तरापत्य गोत्रापत्य, युवापत्यादि अर्थों का विवेचन किया गया है। शोध के परिणामस्वरूप यह विदित होता है कि 'अ' प्रत्ययान्त रूप प्रायः अनन्तरापत्य अर्थ में जबकि 'इ' प्रत्ययान्त अपत्य व गोत्रापत्य दोनों अर्थों में, 'य' प्रत्ययान्त प्रमुखतः अपत्यार्थ में वहीं 'एय' प्रत्यय प्रायः स्त्रीवाचक शब्दों में प्रयुक्त हुआ है।

'अर्थ' शब्द शब्दार्थ, धन, प्रयोजन आदि अनेक अर्थों का वाचक है। यहाँ इस शब्द से 'शब्दार्थ' अभीष्ट है। भर्तृहरि के शब्दों में अर्थ की परिभाषा– उच्चारित शब्द से होने वाली अव्यवहित प्रतीति को 'अर्थ' कहते हैं।[1] यही उस शब्द का शब्दार्थ कहलाता है।

भाषा में अर्थ का सर्वाधिक महत्व होता है। इसमें अर्थहीन शब्द की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शब्द को शरीर के तुल्य तथा 'अर्थ' को आत्मा के समान माना जाता है। यास्क शब्द के निर्वचन (Etymology) के लिए सर्वाधिक आवश्यक अर्थ को मानते हैं– 'अर्थनित्यः परीक्षेत्' (नि०–2–1)। ऋग्वेद के वाग्सूक्त (10–71) में वाणी की महिमा का उल्लेख किया गया है। सार्थक वाणी ही वक्ता को सुख–समृद्धि, यश एवं विजय दिलाती है जबकि अर्थहीन वाणी पुष्प व फल रहित वृक्ष तथा दुग्ध न देने वाली गाय के समान अनुपयोगी होती है।[2]

पतञ्जलि ने महाभाष्य में शब्दानुशासन के प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए अर्थ के महत्व को इस प्रकार प्रतिपादित किया है "अर्थज्ञान के बिना जो शब्द मूलपाठ के रूप में दुहराया जाता है, वह उसी प्रकार ज्ञान को प्रदीप्त नहीं करता, जैसे बिना अग्नि के सूखा ईधन।"[3]

अतः यह सुस्पष्ट है कि अर्थ भाषा का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। अर्थ दो प्रकार का होता है। 1. प्रकृत्यर्थ 2. प्रत्ययार्थ यथा– "औपगवः" इस तद्धित शब्द में 'उपगोः 'उपगु का' यह प्रकृत्यर्थ है तथा 'अण्'– 'अपत्य' यह प्रकृत्यर्थ है, दोनों का समुदितार्थ 'उपगु का अपत्य' यह 'औपगवः' का अर्थ हुआ।

शब्द व अर्थ का सम्बन्ध

शब्द व अर्थ दोनों परस्पर 'अन्योन्याश्रित' हैं तथा दोनों में वाच्यवाचक या बोध्य–बोधक सम्बन्ध है। शब्द अर्थ का वाचक या बोधक होता है तथा अर्थ वाच्य या बोध्य होता है। यह सम्बन्ध नित्य है या अनित्य इसको लेकर शाब्दिकों में मतभेद हैं पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि व भर्तृहरि शब्दार्थ सम्बन्ध को नित्य मानते हैं।[4] कतिपय प्राचीन तथा आधुनिक भाषा–वैज्ञानिक इस सम्बन्ध को अनित्य या यदृच्छामूलक मानते हैं, एक ही अर्थ के लिए विभिन्न भाषाओं में विभिन्न शब्द मिलते हैं यह तथ्य इस पक्ष को प्रमाणित करता है।

अपत्यार्थक ऋग्वैदिक रूपों का अर्थवैज्ञानिक मूल्यांकन

ऋग्वेद की ऋचाओं में लगभग एक सौ अपत्यार्थक शब्द प्राप्त हुए हैं। इन शब्दों में अ, इ, य, एय, आयन इन पाँच अपत्यार्थक प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है, जिनमें सर्वाधिक शब्द 'अ' प्रत्ययान्त है।

पाणिनि के अपत्यार्थ व उसमें विहित प्रत्ययो सुविदित हैं। पाणिनि के अपत्यार्थ में तीन अर्थ समाहित हैं (क) अपत्य/अनन्तरापत्य (ख) गोत्रापत्य (ग) युवापत्य। ऋग्वेद में प्राप्त शब्दों में अधिकांश प्रथम अर्थ से सम्बन्धित है, बहुत थोड़े शब्द गोत्रार्थ से जबकि केवल एक शब्द 'युवापत्य' अर्थ में मिलता है।

---

[1] यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्।। वाक्य० 2–234।

[2] उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति मायया वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्।। ऋ० 10–71–5।

[3] यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते। अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हचित्। महा०– शब्दानुशासनस्य प्रयोजन।

[4] नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्तत्राम्नाता महर्षिभिः।
सूत्राणां सानुतन्त्राणां भाष्याणां च प्रणेतृभिः।। वाक्य० ब्रह्मकाण्ड–23

उपर्युक्त तीनों अर्थों का सामाजिक दृष्टि से बड़ा महत्व है। प्रथम अपत्यार्थ सम्बन्धसामान्य की सूचना के लिए प्रयोग किया गया है, जैसे– आर्चत्कः (ऋचत्क का पुत्र) ऐडः (इडा का पुत्र), पौरुकुत्स्यः (पुरुकुत्स का अपत्य) यहाँ सामान्यतः माता या पिता के नाम के साथ सम्बद्ध करना ही प्रयोजन है जिससे समाज में यह विदित हो जाये कि यह 'ऋचत्क' का या 'इडा' का पुत्र है। प्रयोजन की दृष्टि 'गोत्रार्थ' अधिक महत्वपूर्ण है– किसी विशिष्ट पुरुष से सम्बन्ध को सूचित करना जिससे उसकी प्रसिद्धि से एक बड़ा परिवारसमूह लाभान्वित हो, परस्पर एकता तथा गोत्रभिन्नविवाह आदि की सामाजिक व्यवस्था सम्भव हो सके। तृतीय युवापत्यार्थ उत्तराधिकार आदि की दृष्टि से उपयोगी है।

'अ' (पा०–अण्, अञ्) प्रत्ययान्त अपत्यार्थक–रूप

कौशिकः (1–10–11) यह इन्द्र का पैतृक नाम है। यास्क ने उल्लेख किया है कि 'कुशिक' नामक कोई राजा हुआ था 'कुशिको नाम राजा बभूव'– नि० 2/7/13. ऋषिवाचक होने से अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय हुआ।[5] कुशिकस्य अपत्यम् √कुशिक अण्। नैरूक्तों के अनुसार 'इन्द्र' मध्यमस्थानी देवता (विद्युत्) है। पाणिनि ने इस शब्द को ऋषिगोत्रवाचक शब्द के रूप में प्रयुक्त किया है।[6] इससे प्रतीत होता है कि उत्तरकाल में इस शब्द के अर्थ में विस्तार हुआ है। कुशिकस्य गोत्रापत्यम् √कुशिक अञ्।[7]

औशिजः (1–18–1) यह 'कक्षीवान्' ऋषि का पैतृकनाम है। वैदिक शब्दकोष निघण्टु में 'उशिज्' शब्द 'मेधावी' अर्थ में पठित है। (निघ० 3–15–19 भा०ख०श०) यास्क के अनुसार 'कान्तिवान्' को उशिज् √वश कान्तौ+इज्–कहते हैं तथा उसके पु. को औशिजः।[8] 'शब्दकल्पद्रुम में उशिज् का अर्थ 'कमनीय ब्रह्म' मिलता है। 'उशिज्' शब्द से अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय हुआ है।[9] उशिजः अपत्यम् √उशिज् अण् औशिजः (उशिज् का पुत्र 'कक्षीवान्) यहाँ अन्तोदात्त स्वर होने से अपत्यार्थ की प्रधानता है।

मानुषः (1–37–7) मनुष् से सम्बन्धित या मनुष में उत्पन्न होने वाले क्रोध आदि के अर्थ में ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। पाणिनि मनुष् (मनु+षुक्) शब्द से जातिविशिष्ट अपत्यार्थ में 'अञ्' प्रत्यय करके 'मानुषः' शब्द की निष्पत्ति दर्शाते हैं।[10] √मनुष् (षुक्) अञ् = मानुषः (मनुष् के अपत्य – एक जाति)।

काण्व : (8–2–40) 'कण्व' ऋषि के पुत्र मेधातिथि का अपत्यवाचक नाम है। निघण्टु में 'कण्व' शब्द मेधावी के पर्यायों में पठित है। निघ०– 3–15–7 यह शब्द 'तस्याऽपत्यम् (अ० 4–1–92) सूत्र से अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय के प्रयोग से बना है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में भी एक काण्वः (1–45–5) शब्द प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द गोत्रार्थक है, 'कण्व' ऋषि गोत्र में उत्पन्न 'प्रस्कण्व' आदि का गोत्रवाचक नाम है। पाणिनि 'कण्व' शब्द से गोत्रार्थ में 'यञ्' प्रत्यय का विधान करते हैं।[11] √कण्व यञ् = काण्व्यः (कण्व के पौत्रादि)

शार्यातः (1–51–12) शर्यात के अपत्य का यह अभिधान है। सायण यहाँ अपत्य अर्थ न मानकर सम्बन्धित ;त्मसमंजमकद्ध अर्थ मानते हैं– "शर्यातस्यैतत्राम्नो राजर्षेः सम्बन्धितः।" √शर्यात+अण् = शार्यातः (शर्यात का अपत्य) अन्तोदात्त होने से प्रत्ययार्थ की प्रमुखता है।

वार्षागिरः (1–100–17) वृषागिर का अनन्तरापत्य, यह अम्बरीष, ऋज्राश्व, भयमान, सहदेव तथा सुराधस् का पैतृकनाम है। सायण ने 'वृषागिर' को राजा माना है– "वृषागिरो राज्ञः पुत्राः ऋज्राश्वादयः।" √वृषगिर अण् = वार्षागिरः।

रौहिणम्: (1–103–2) रोहण (आरोहण) से सम्बन्धित–मेघ। यह शब्द निघ0 में मेघनामों में परिगणित है।[12] ऋग्वेद में यह शब्द अपत्यार्थक नहीं है। पाणिनि काल में 'रोहिणी' शब्द से अपात्यार्थ में ढक् (एय) प्रत्यय होकर 'रौहिणेयः' (रोहिणी का पुत्र) रूप का प्रयोग उपलब्ध होता है।[13] इसे अर्थविस्तार कहा जा सकता है।

वैदिक शब्द → रोहण + अण् → रौहिणम् (रोहण क्रिया से सम्बन्धित–मेघ)

लौकिक शब्द → रोहिणी + ढक् (एय) → रौहिणेयः (रोहिणी का पुत्र)।

आथर्वणः (1–116–12) अर्थवन् के अनन्तरापत्य 'दध्यङ्' (दधीच्) ऋषि का पैतृक नाम है। 'अर्थवन्' निघण्टु में मध्यमस्थानी देवताओं में पठित है।[14] यास्क के अनुसार 'अथर्वन्' लोग स्थिर प्रकृति वाले होते हैं, उनकी चित्तवृत्तियाँ क्षण–क्षण में बदलने वाली नहीं होती, प्रत्युत वे अचल व अटल होते हैं। 'थर्व' धातु चलनार्थक है, उसका प्रतिषेध 'अर्थवन्' है।[15] √नञ् थर्व कनिन्।यास्क ने निघ० में दध्यङ् को मध्यमस्थानी देवों में पठित किया है। यास्क इसका निर्वचन करते हैं– जो ध्यान में लगा है अथवा जिसमें सभी ध्यान लगाते हैं।[16] अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय होकर शब्द की निष्पत्ति हो जाती है। √अर्थवन् अण् = आथर्वणः (अथर्वन् का अपत्य 'दध्यङ्ऋषि या दधीच्)।

आर्चत्कः (1–116–22) शर ऋषि का अपत्यार्थक नाम है। सा० ने इसे अपत्यार्थक शब्द माना है। 'ऋचत्क' शब्द से तस्यापत्यम् (अ०–4–1–92) सूत्र से अनन्तरापत्य अर्थ में अण्' प्रत्यय होता है। ऋचत्क + अण् = आर्चत्कः (ऋचत्क का पुत्र 'शर' नाम ऋषि)

ब्राह्मणाः (1–164–45) ब्रह्मन् के अपत्यों का नाम यह जातिविशिष्ट अपत्यार्थ का वाचक है क्योंकि पाणिनि ने जातिभिन्न अर्थ में टि लोप का विधान किया है, प्रकृत में टिलोप नहीं हुआ जिससे विदित होता है कि यह जाति अर्थ का वाचक है।[17] अपत्यार्थ में उत्सर्ग 'अण्' प्रत्यय हुआ– √ब्रह्मन् अण् = ब्राह्मण जस् झ ब्राह्मणाः (ब्रह्मन् के अपत्य – एक विशेष जाति) पाणिनी के समय तक इस शब्द का अर्थ विस्तार होकर 'गोत्रापत्य' अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा था।[18]

भारतः (2–7–1) ऋग्वेद के इस मन्त्र में यह शब्द अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है। निघण्टु (3–19–1) में 'भरताः' शब्द 'ऋत्विज्' के नामों में पठित है। पाणिनि ने उत्सादिगण में 'भरत' शब्द को सम्मिलित करके उत्सादिभ्योऽञ् (अ० 4–1–86) से अपत्यार्थ में 'अञ्' प्रत्यय का विधान किया है। √भरत अञ् = भारतः (भरत की सन्तान) शुभ्रादिगण में भी यह शब्द परिगणति है अतः ढक्[19] (एय) प्रत्यय भी होता है √भरत ढक् (एय) = भारतेयः (भरत की सन्तान)। इस प्रकार वेदोत्तरकाल में इस शब्द में अपत्यार्थ का विस्तार हो गया यह सुस्पष्ट है।

नार्मरम् (2–13–8) नृमर के पुत्र 'सहवसु' का पैतृक अभिधान है। सा० – मनुष्यों को मारने वाले किसी असुर का नाम 'नृमर' बताया

---

[5] 'अ' प्रत्ययान्त अपत्यार्थक रूप।

[6] मधुबभ्रोर्ब्राह्मणकौशिकयोः अ० 4–1–106।

[7] ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च – अ० 4–1–114।

[8] उशिक् वष्टेः कान्तिकर्मणः। औशिज उशिजः पुत्रः। नि०–6–10–42 अ०–ख०–श०

[9] तस्याऽपत्यम् अ०–4–1–92।

[10] मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च – अ० 4–1–161।

[11] गर्गादिभ्यो यञ् – अ० 4–1–105 – गर्गादिगण में 'कण्व' शब्द पठित है।

[12] निघ० 1–15–15।

[13] शुभ्रादिभ्यश्च – अ० 4–1–123।

[14] निघ० – 5–5–13।

[15] अथर्वाणोऽथर्वण्वन्तः, थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः निरु० – 5–5–13।

[16] दध्यङ् प्रत्यक्तो ध्यानमिति वा, प्रत्यक्तमस्मिन् ध्यानमिति वा। निरु० 5–6–21।

[17] ब्राह्मोऽजातौ अ० 6–4–172।

[18] मधुबभ्रोर्ब्राह्मणकौशिकयोः – 4–1–106 – ब्राह्मणगोत्र अर्थ में माधव्यः रूप बनता है।

[19] शुभ्रादिभ्यश्च – अ० 4–1–123।

है। जिसके पुत्र का नाम 'नार्मर' पड़ा।[20] 'नृमर' शब्द से अपत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय हुआ है– √नृमर अण् = नार्मरम् (नृमर का अपत्य – सहवसु)

देववातः (4–15–4) 'सृञ्जय' का पितृसम्बन्ध पर आधारित नाम है। सा० ने 'सृञ्जय' को सोमयाग करने वाला याजक बताया है– "सृञ्जयो' नाम कश्चित्सोमयाजी।" 'देववात' शब्द में अपत्यार्थक 'अण्' प्रत्यय लगने से प्रकृत रूप प्राप्त हुआ–देववात + अण् = दैववातः (देववात का अपत्य–सृञ्जय)

वैदथिनः (4–16–13) विदथिन् का अनन्तरापत्य ऋजिश्वत् का पैतृकनाम है। सा० के अनुसार यह अपत्यार्थ शब्द है तथा किसी राजा का नाम है।[21] व्यञ्जनान्त 'विदथिन' शब्द से अनन्तरापत्य अर्थ में पूर्व उदाहरणों की भांति अण् प्रत्यय हुआ है। √विदथिन् अण् = वैदथिनः (विदथिन् का अपत्य ऋजिश्वन्)

आंगिरसः (4–40–1) अंगिरस् ऋषि का अपत्य। यास्क ने अंगिरस ऋषि को अंङारों से उत्पन्न माना है[22], अर्थात् कठोर तपस्वी। वानप्रस्थी को भी अंगिरस कहते हैं। क्योंकि वह प्रमुखतः अग्नि का उपासक होता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राण का एक नाम अंङिरस है जिसका निर्वचन–अंगानां रसः √अंग रस–अंगिरस्। ऋषिवाचक अंगिरस् शब्द से अपत्यार्थक 'अण'[23], प्रत्यय होकर प्रकृत रूप बना है– अंङिरस् अंगिरस अण् = आंगिरसः (अंगिरस् ऋषि का पुत्र) लौकिक संस्कृत में 'आंगिरस' शब्द गोत्रवाचक रूप में प्रयुक्त होने लगा यह तथ्य पाणिनि के "कपिबोधादंगिरसे" अ० 4–1–107 सूत्र से विदित होता है।

त्रैवृष्णः (5–27–1) यह 'त्र्यरुण' का पैतृकनाम है। सा० ने इसे अपत्यार्थक रूप माना है। त्रिवृष्ण का पुत्र त्र्यरुण राजर्षि है।[24] √त्रिवृष्ण अण् = त्रैवृष्णः (त्रिवृष्ण का पुत्र 'त्र्यरुण')

दानवम् (5–29–4) दनु या दानु का पुत्र "वृत्र" का यह अपत्यार्थक नाम है। √दनु + अण् = दानवम् (दनु का अपत्य 'वृत्र') सायण 'दानु' शब्द से रूपनिष्पत्ति मानते हैं तथा क्वचित् प्रत्ययलुक् भी स्वीकार करते हैं– यथा– मन्त्र 2–11–18 में प्रयुक्त 'दानुम्' शब्द को अपत्यार्थक माना है तथा 'दानोः पुत्रम्' यह विग्रह किया है अतः यहाँ अपत्यार्थक प्रत्यय का लुक् मानना पड़ता है। √दानु + अण् = दानुम् (दानु का पुत्र 'वृत्र') पाणिनि ने इस सन्दर्भ में कोई नियम नहीं बनाया है।

गैरिक्षितः (5–33–8) गिरिक्षित का अपत्य 'त्रसदस्यु'। सा० यहाँ 'गोत्रापत्य' अर्थ मानते हैं– गिरिक्षित गोत्र में उत्पन्न 'त्रसदस्यु' नामक राजर्षि का अभिधान है।[25] काठक संहिता के (13.12) के अनुसार यह शब्द 'यक्षों के कुलविशेष' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। √गिरिक्षित अण् = गैरिक्षितः (गिरिक्षित का अपत्य 'त्रसदस्यु')

मारुताश्वः (5–33–9) यह 'विदथ' का पैतृकनाम है। 'मरुताश्व' शब्द के विषय में सायण का कथन है– 'मरुतसदृशवेगाश्ववान्मरुताश्वः'। मरुताश्व का अपत्य 'विदथ' नाम राजा के लिए वेद में इस शब्द का प्रयोग किया गया है पाणिनि के अनुसार 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अपत्यार्थ से अण् प्रत्यय होकर रूप की निष्पत्ति ज्ञेय है– √मरुताश्व अण् = मारुताश्वः (मरुताश्व का अपत्य 'विदथ') अन्तोदात्त स्वर होने से प्रत्ययार्थ की प्रधानता है।

श्यावाश्वः (5–52–1) 'श्यवाश्व' नामक ऋषि की सन्तान। श्यवाश्व + अण् = श्यावाश्व (श्यवाश्व का अपत्य)

वाय्यः (5–79–1, 2, 3) यह वय्य के पुत्र 'सत्यश्रवस्' का पैतृक नाम है। 'वय्य' शब्द से अपत्यार्थ में 'तस्यापत्यम्' से अण् प्रत्यय हुआ है। √वय्य अण् = वाय्यः (वय्य का पुत्र 'सत्यश्रवा')

शौचद्रथः (5–79–2) यह 'सुनीथ' का पैतृकनाम है। 'शुचद्रथ' शब्द से अपत्यार्थ में औत्सर्गिक 'अण्' प्रत्यय हुआ है। √शुचद्रथ अण् = (शुचद्रथ का अपत्य सुनीथ)।

चायमानः (6–27–5, 8) चयमान के पुत्र 'अभ्यवर्त्तिन्' का पैतृकनाम है। यह कोई 'राजा है ऋचा में जिसके प्रभूत दान का स्तवन किया गया है। व्याकरणिक प्रक्रिया पूर्ववत् है, अपत्यार्थ में 'अण्' प्रत्यय हुआ है। √चयमान अण् = चायमानः (चयमान का पुत्र – अभ्यवर्त्तिन्)।

पार्थवः (6–27–8) यह गोत्रार्थक रूप है। पृथु के गोत्र या वंश में उत्पन्न सम्राट् 'अभ्यवर्त्तिन्' का नाम है।[26] पृथु अण् = पार्थवः (पृथु का गोत्रापत्य – अभ्यवर्त्तिन्)

साञ्र्जयः (6–47–25) यह प्रस्तोक का पैतृक नाम है। ऋचा में प्रस्तोक की दानशीलता का वर्णन किया गया है। सृञ्जय + अण् = साञ्र्जयः (सृञ्जय का पुत्र–प्रस्तोक)

भारद्वाजः (6–51–12) यह किसी 'होता' की गोत्रवाचक संज्ञा है।[27] यास्क इसे ऋषिवाचक शब्द मानते हैं तथा विद्या या बल को धारण करने के कारण 'भरद्वाज या भारद्वाज कहते हैं।[28] पाणिनि के विदादिगण में 'भरद्वाज' शब्द पठित है तथा ऋषिवाचक भी है अतः गोत्रापत्य अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय हुआ है।[29] √भरद्वाज अञ् = भारद्वाजः (भरद्वाज ऋषि का गोत्रापत्य)। आद्युदात्त होने से प्रकृत्यर्थ की प्रधानता है। अश्वादिगण में 'भरद्वाज' शब्द के पठित होने से गोत्रार्थ में 'फञ्' प्रत्यय भी होता है।[30] √भरद्वाज + फञ् = भारद्वाजायनः (भरद्वाज का गोत्रापत्य)

शाण्डः (6–63–9) यह किसी राजा का अपत्यार्थक नाम है। √शण्ड अण् = शाण्डः (शण्ड का अपत्य)।

पैजवनः (7–18–22, 23) यह 'सुदास' का पैतृकनाम है। ऋग्वेद की इन ऋचाओं में 'सुदास' के भूरिदान की प्रशंसा की गयी है। पिजवन शब्द से अपत्य–अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होकर रूप निष्पन्न हुआ है। √पिजवन + अण् = पैजवनः (पिजवन का पुत्र–सुदास)

वायतः (7–33–2) 'वयन्त्' के पुत्र 'पाशद्युम्न' का यह पैतृक नाम है। वयन्त् शब्द से अपत्यार्थक 'अण्' प्रत्यय हुआ है। √वयन्त् अण् = वायतः (वयन्त् का पुत्र – पाशद्युम्न)

---

[20] नृन् मनुष्यान्मारयतीति नृमरः कश्चिदसुरः तस्यापत्यम् ऋ०स०भा० – 2–13–8।

[21] विदथिनः पुत्राय ऋश्विने ऋजश्विनाम्ने राज्ञे – ऋ०सा०भा० – 4–16–13।

[22] अंगारेष्वंगिराः निरु० 3 पा० 3 ख० 11।

[23] अ० 14–1–114।

[24] त्रिवृष्णपुत्रस्यरुण इत्येतत्राम्ना राजर्षि – ऋ०सा०भा० 5–27–1।

[25] गिरिक्षितगोत्रोत्पन्नस्य त्रसदस्योरेतन्नामकस्य राजर्षेः ऋ०सा०भा० 5–33–8।

[26] पृथोर्वंशजस्याभ्यावर्त्तिनो राज्ञः – सा०भा० 6–27–8।

[27] भारद्वाजो भरद्वाजगोत्रजो होता – ऋ०सा०भा० – 6–51–12

[28] भरणाद्भारद्वाजः – निरु० 3–3–11।

[29] अ० 4–1–104।

[30] अश्वादिभ्यः फञ् अ० 4–1–110।

कौरयाणः (8–3–21) कुरयाण के पुत्र 'पाकस्थामन्' की पिता के नाम पर आधारित संज्ञा है। निघण्टु (4–2–53) में यह शब्द अनेकार्थक शब्दों के मध्य संग्रहीत है। यास्क ने इसे अपत्यार्थक शबद नहीं माना है तथा इसकी व्युत्पत्ति[31] की है– 'कौरयाणः कृतयानः' अर्थात् सबको गति देने वाला जो कि मन्त्र के देवता इन्द्र का विशेषण है सायण के अनुसार 'कुरयाण' वह है जो कि शत्रुओं पर आक्रमण हेतु सेनाओं को सज्जित रखता है उसका पुत्र 'कौरयाण' है।[32] √कुरयाण + अञ् = कौरयाणः (कुरयाण का पुत्र – पाकस्थामन्)

✸ ऋग्वेद के अपत्यार्थक रूपों में 'अ' प्रत्यय अधिकांशतः अनन्तरापत्य–अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कुछ ही रूपों में उसका प्रयोग गोत्रार्थ में हुआ है। इस सन्दर्भ में पाणिनि से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि प्रायः सभी ऋषिवाचक शब्दों से गोत्रार्थ में ही प्रत्यय होता है।[33] यथा– √कश्यप अञ् – काश्यपः (कश्यप का गोत्रपत्य), √कुशिक अञ् – कौशिकः (कुशिक का गोत्रापत्य) इत्यादि। कुछ अपवाद भी है[34]– √वसिष्ठ अण् – वासिष्ठः (वसिष्ठ का अपत्य) √विश्वामित्र अण् – वैश्वामित्रः (विश्वामित्र का अपत्य)।

✸ 'अञ्' प्रत्यायन्त गोत्रवाचक शब्दों के बहुवचन में लुक् होता है।[35] ऋग्वेद में इस नियम के उदाहरण प्राप्त नहीं होते हैं।

✸ ऋषिवाचक शब्दों में गोत्रार्थक प्रत्यय का बहुवचन में लोप होता है। ऋग्वेद में इसके कतिपय उदाहरण उपलब्ध होते हैं। यथा– √भरद्वाज अम् (अञ्) – भरद्वांजान् (6–47–25) भरद्वाज के गोत्रापत्य, √वसिष्ठ (अञ्) शस् – वसिंष्ठान् (7–33–2) वसिष्ठ के गोत्रापत्य। पाणिनि के समय तक कुछ अन्य उदाहरण इनमें सम्मिलित हो गये हैं।[36]

✸ ऋग्वेद में जनपदवाचक शब्दों से अपत्यार्थ व तद्राजार्थ में अ (अग्, अञ्), प्रत्यय के उदाहरण अप्राप्त है। जबकि पाणिनि काल में इनका प्रचुर प्रयोग मिलता है।[37] यथा– √इक्ष्वाकु अञ् झ ऐक्ष्वाकः (इक्ष्वाकुदेश का राजा, तद्देशीय क्षत्रिय का पुत्र),
√अंग अण् आंगः (अंगदेश का राजा, तद्देशीय का पुत्र)

'इ' (इञ्) प्रत्ययान्त अपत्यार्थक रूप

आग्निवेशिम् (5–34–9) शत्रि नामक राजर्षि का पैतृकनाम ;च्ंजतवदलउपबेद्ध है।[38] 'अग्निवेश' शब्द से अपत्यार्थ या गोत्रार्थ में 'अत इञ्' अ०–4–1–95 सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय होता है। √अग्निवेश इञ् – अग्निवेशिम् (अग्निवेश की सन्तान–रात्रि) पाणिनि ने यह शब्द गर्गादिगण में परिगणित किया है अतः गोत्रार्थ में 'यञ्' प्रत्यय हो जाता है। जो कि इस शब्द में हुये अर्थ विस्तार को सूचित करता है। √अग्निवेश यञ् – अग्निवेश्यः (अग्निवेश का गोत्रापत्य) आद्युदात्त स्वर होने के कारण प्रकृत्यर्थ का प्राधान्य है। अतः इ (इञ्) प्रत्यय प्रायः गोत्रार्थ में होता है।

वैददश्विः (5–61–10) 'पुरुमीळ्ह' नामक विप्र का पैतृक नाम हैं ऋचा में उसके द्वारा दिए गये दान का स्तवन है। गोत्रापत्य–अर्थ में इञ् प्रत्यय हुआ है। √विवदश्व इञ् – वैददश्वि (विददश्व गोत्र में उत्पन्न–पुरुमीड्ह)

प्रातर्दनिः (6–26–8) 'क्षत्रश्री' नामक राजा का पैतृकनाम है। सा० के अनुसार 'प्रतर्दन' नामक राजा के पुत्र का यह अभिधान है।[39] प्रकृतपद में अनन्तरापत्य– अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है। √प्रतर्दन इञ् – प्रातंर्दनिः (प्रतर्दन का पुत्र – क्षत्रश्री)

पौरुकुत्सिम् (7–19–3) यह 'व्रसदस्यु' का पैतृक नाम है। यास्क ने 'व्रसदस्यु' को दस्युओं को त्रस्त्र करने वाला बताया है। 'पुरुकुत्स' शब्द से गोत्रार्थ में 'इञ्' प्रत्यय हुआ है। √पुरुकुत्स इञ् – पौरुंकुत्सिम् (पुरुकुत्स का गोत्रापत्य व्रसदस्यु) 'पुरुकुत्स' शब्द का इसी अर्थ में 'यञ्' प्रत्ययान्त पौरुकुत्स्यः (5–33–8) रूप भी प्रयुक्त होता है। पाणिनि ने 'पुरुकुत्स' शब्द गर्गादिगण में संगृहीत किया है अतः यञ् प्रत्यय – 'गर्गादिभ्यो यञ् (अ० 4–1–105) से हो जायेगा। दोनों रूपों में केवल स्वर भेद है।

प्लायोगिः (8–1–33) प्लयोग या प्रयोग का गोत्रापत्य 'आसंग' का गोत्रनाम है। सा० ने अपत्यार्थ में प्रत्यय माना है– 'प्रयोगनाम्नः पुत्रः आसंगों नाम राजा।' गोत्रार्थ में 'प्लयोग' शब्द से 'इञ्' प्रत्यय हुआ– √प्लयोग इञ् – प्लायोंगिः (प्लयोग का गोत्रापत्य – आसंग)

संवरणिः (8–51–1) यह 'मनु' का गोत्रनाम[40] है। 'संवरण' इस समस्त शब्द से गोत्रार्थ में 'इञ्' प्रत्यय हुआ– √संवरण इञ् – सांवरणि (संवरण का गोत्रापत्य–मनु)

सावर्णिः (10–62–11) यह 'मनु' का गोत्रनाम है। 'सवर्ण' व 'संवरण' सम्भवतः दोनों नाम किसी एक ही व्यक्ति के हैं। 'सवर्ण' शब्द से गोत्रापत्य–अर्थ में 'इञ्' प्रत्यय हुआ– √सवर्ण इञ्–सावर्णिः (सवर्ण का गोत्रापत्य–मनु)। आद्युदात्तस्वर होने से प्रकृत्यर्थ प्रधान है। 'सवर्ण' शब्द से समान अर्थ में 'यञ्' प्रत्ययान्त रूप भी प्रयुक्त हुआ है– सावर्ण्यः (10–62–9) (सवर्ण का गोत्रापत्य–मनु) केवल स्वर भेद है, यहाँ अन्तोदात्त होने से प्रत्ययार्थ की प्रधानता है।

✸ ऋग्वेद में 'इ' प्रत्यय का प्रयोग 'अपत्य' व गोत्रापत्य दोनों अर्थों में हुआ। उत्तरवर्ती काल में 'इ' प्रत्यय के साथ–साथ कुछ अन्य इक, इय, ईन, ईय आदि प्रत्ययों का भी प्रयोग होने लगा। शुद्ध 'इ' प्रत्यय का प्रयोग पाणिनि ने अनन्तरापत्य व गोत्रापत्य के अतिरिक्त **तद्राज व अपत्यार्थ** दोनों में समुदित अर्थ में किया है[41] – यथा – उदुम्बर इञ् – √औदुम्बरिः (उदुम्बरदेश का राजा, तद्देशीय क्षत्रिय का पुत्र)

✸ 'इक' आदि संयुक्त प्रत्ययों को प्रयोग अपत्यार्थ (रैवतिकः– रेवती का अपत्य), **जातिविशिष्ट अपत्यार्थ** (क्षत्रियः– क्षत्र जाति में उत्पन्न) व कुत्सावशिष्ट युवापत्य (यामुन्दायनिकः – यामुन्दायन सौवी (गोत्रज का कुत्सिज युवापत्य) इत्यादि अर्थों में हुआ है।

'य' प्रत्ययान्त अपत्यार्थक रूप

आदित्यः (1–105–16) सूर्य का मातृक (Metronymics) नाम है। 'अदिति' शब्द वैदिक कोष निघ० में पृथिवी, वाग्, गो तथा देवमाता (परमेश्वर) आदि अर्थों में पठित है। 'आदित्य'– निघ० में द्युस्थानी देवों में प्राथम्येन पठित है। यास्क– ने आदित्य का निर्वचन किया है[42] – "सूर्य प्रत्येक पदार्थ के रसों को अपनी रश्मियों से ग्रहण करता है, प्रातः काल नक्षत्रादिकों की ज्योति का आहरण करता है अथवा यह आदिति का पुत्र है।" पाणिनि 'अदिति' शब्द से अपत्यार्थ में 'ण्य'[43] प्रत्यय का अनुशासन करते हैं– √अदिति ण्य–आदित्यः (अदिति का अपत्य)।

औचथ्यः (1–158–1) यह 'दीर्घतमस्' ऋषि का पैतृकनाम है। 'उचथ' शब्द से अपत्यार्थ में 'य' प्रत्यय हुआ। √उचथ य – औचथ्यः (उचथ

---

[31] निरु० 5–3–53।
[32] शत्रून् प्रति युद्धाभिमुख्येन कृतं यानं हस्त्यश्वादिकं येनासौ कुरयाणः, तस्य पुत्रः – ऋ०सा०भा० – 8–3–21।
[33] अ० – 2–4–65।
[34] अ० – 4–1–104/2।
[35] अ० – 2–4–64।
[36] अ० – 2–4–65।
[37] अ० – 4–1–168–170।
[38] अग्निवेशिसुतं शत्रिमेतन्नामकं राजर्षिम् – ऋ०सा०भा० – 5–34–9।
[39] प्रतर्दनो नाम राजा। तस्यपुत्रः क्षत्रश्रीरेतन्नामकः। ऋ०सा०भा० 6–26–8।
[40] सवर्णिं मनुम् – ऋ०सा०भा० – 10–62–11।
[41] अ० – 4–1–171।
[42] आदत्ते रसान्, आदत्ते भासं ज्योतिषां, आदीप्तो भासेति वा, आदितेः पुत्रः इति वा। निरु० – 2/4।
[43] दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः अ० – 4–1–85।

का अपत्य–दीर्घतमस्) पाणिनि ने 'उचथय' शब्द को गर्गादिगण में समाविष्ट किया है। अतः 'यञ्' प्रत्यय होकर प्रकृत रूप निष्पन्न हो जायेगा। 'यञ्' प्रत्यय गोत्रार्थ में होता है अतः लौकिक रूप गोत्रार्थक होगा।

साहदेव्यः (4–15–7–10) यह कुमार सोमक का पैतृक नाम है। सहदेव नामक राजा का यह पुत्र है।[44] 'सहदेव' शब्द से अपत्य अर्थ में 'य' प्रत्यय हुआ है। √सहदेव य – साहदेव्यः (सहदेव का पुत्र–कुमार सोमक)।

दार्भ्यः (5–61–17) रथनीति का पैतृकनाम है। दृभ या दर्भ शब्द से अपत्यार्थ में 'ण्य'[45] प्रत्यय होकर हुयी है। √दृभ् ण्यः दार्भ्यः (दृभ का अपत्य–रथनीति)

चैद्यः (8–5–377) 'कशु' का पैतृक नाम है। ऋचा में 'चेदि' के पुत्र 'कश' की दानशीलता का स्तवन किया गया है। √चेदि य – चैद्यः (चेदि का अपत्य)।

वैन्यः (8–9–10) यह 'पृथी' का पैतृक नाम है। निघ० में 'वेन' शब्द मेधावी, यज्ञ तथा पृथिवीस्थानी देवता (वायु) के नामों से पठित है। कुर्वादिगण में पाणिनि 'वेन' शब्द रखा है अतः उससे अपत्य अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है।[46] √वेन ण्य – वैन्यः (वेन का अपत्य – पृथ्वी)।

तार्क्ष्यः (10–178–1) यह 'अरिष्टनेमि' का गोत्रनाम है। निघ० में यह शब्द 'अश्व' वाचकों में पठित है। पाणिनि के अनुसार गोत्रार्थ में 'तृक्ष' शब्द से 'यञ्'[47] प्रत्यय होता है। √तृक्ष + यञ् – तार्क्ष्यः (तृक्ष का गोत्रापत्य)।

ऋग्वेद में 'य' प्रत्ययान्त रूप प्रमुखतया अपत्य–अर्थ में प्राप्त होते हैं। पाणिनि ने इस प्रत्यय का सर्वाधिक प्रयोग गोत्रार्थ में तथा अनन्तरापत्यार्थ में किया है। यथा– गार्ग्यः (गर्ग का गोत्रापत्य), वात्स्यः (वत्स का गोत्रापत्य), राजन्यः[48] (राजा की सन्तान), कौरव्यः[49] (कुरु की सन्तान) इत्यादि।

✸ तद्राज व अनन्तरापत्य दोनों के समुदित अर्थ में भी इस प्रत्यय के उदाहरण मिलते हैं। यथा– सौवीर्यः[50] (सुवीर का राजा तथा क्षत्रिय का पुत्र), कौरव्यः[51] (कुरु देश का राजा व अपत्य)

✸ इस प्रत्यय से विकसित 'व्य' प्रत्यय कुछ विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त है √भ्रातृ व्यत् झ भ्रातृव्यः[52] (भाई का पुत्र–भतीजा), √भ्रातृ व्यन् झ भातृव्यः[53] (भाई का पुत्र–शत्रु)।

✸ गोत्रार्थ में आये 'यञ्' प्रत्यय का बहुवचन में लुक् हो जाता है किन्तु उसका अर्थ शब्द में बना रहता है।[54] यथा– गर्गाः (गर्ग गोत्रोत्पन्न अनेक पुत्र) वत्साः (वत्स गोत्रोत्पन्न एकाधिकपुत्र)।

'एय' प्रत्ययान्त अपत्यार्थक रूप

आर्जुनेयम् (4–26–1) यह कुत्स का पैतृक नाम है। निघ० में 'अर्जुन' शब्द रूपवाचक शब्दों में पठित है। इसका स्त्रीलिंग शब्द 'अर्जुनी' उषा का वाचक है। स्त्रीवाचक शब्द से 'स्त्रीभ्यो ढक्' – अ० 4–1–120 से अपत्यार्थ में ढक् (एय) प्रत्यय होगा। पुल्लिंग 'अर्जुन' शब्द से 'शुभ्रादिभ्यश्च' अ० 4–1–123 सूत्र से प्रत्यय होगा। शिवादिगण में 'अर्जुन' शब्द पठित है। अतः अपत्यार्थ में 'शिवादिभ्योऽण्' अ० 4–1–112 से 'अण्' प्रत्यय होने पर 'आर्जुनः' रूप लौकिक संस्कृत में प्राप्त होता है। √अर्जुनी + ढक् – आर्जुनेयम् (अर्जुनी या अर्जुन का अपत्य–कुत्स)। सायण ने 'अर्जुन' 'इन्द्र' का नाम माना है– 'अर्जुन इतीन्द्रस्य नाम'। अन्तोदात्त होने से प्रत्ययार्थ प्रधान है।

शातवनेयः (1–59–7) यह 'पुरुणीय' का पैतृक नाम है। सायण के अनुसार 'शतवनि' उसे कहते हैं जो कि सौ यज्ञों का संवनन कर चुका है।[55] शुभ्रादिगण आकृतिगण है अतः यह शब्द उसमें अपठित होने पर भी इसका संग्रह उसमें करके अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय होकर इस शब्द की निष्पत्ति हो जाती है। √शतवनि + ढक् = शातवनेयः (शतवनि की सन्तान–पुरुणीय)।

मामतेयम् (1–147–3) यह दीर्घतमस् ऋषि का मातृक नाम (Matronymics) है। ममता उचथ (उचत्थ) की पत्नी है। स्त्रीवाचक 'ममता' शब्द से अपत्यार्थ में ढक् (एय) प्रत्यय हुआ है।[56] √ममता ढक् – मामतेयम् (ममता का अपत्य–दीर्घतमस्)

वाजिनेयः (6–26–2) यह भरद्वाज ऋषि का मातृक नाम है निघुण्ट में 'वाजिनी' शब्द उषा के नामों में पठित है। वाजिनी शब्द से अपत्यार्थ में ढक् (एय) प्रत्यय हुआ है। √वाजिनी ढक् – वाजिनेयः (वाजिनी का पुत्र–भरद्वाज)।[57]

सारमेयः (7–55–2, 3) यह शुनक का मातृक नाम है। 'सरमा' यह शब्द मध्यमस्थानी देवता (वाणी) के अर्थ में निघ० में पठित है।[58] सरमा को 'देवशुनी' माना गया है तथा ऋग्वेद के दशम मण्डल का 108वाँ सूक्त सरमा–पाणि संवाद सूक्त के नाम से जाना जाता है। सरमा शब्द से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय होकर प्रकृत रूप निष्पन्न हो जाता है। √सरमा ढक् – सारमेयः (सरमा का अपत्य – शुनक)।

आदितेयम् (10–88–11) सूर्य का मातृकनाम है। अदिति शब्द से अपत्यार्थ में– ढक् प्रत्यय होकर यह रूप बनता है। अदिति ढक् – आदितेयम् (अदिति का अपत्य–सूर्य)।

गार्ष्टेयः (10–111–2) गृष्टि का अनन्तरापत्य। गृष्टि शब्द से अपत्यार्थ में ढक् प्रत्यय होता है।[59] गृष्टि ढक् – गार्ष्टेयः (गृष्टि का अपत्य)। अन्तोदात्त स्वर होने से प्रत्ययार्थ की प्रमुखता है।

ऋग्वेद में 'एय' प्रत्ययान्त रूप अनन्तरापत्यार्थक है तथा प्रायः स्त्रीलिंग शब्द से होने के कारण – मातृक नामों के वाचक होते हैं। पाणिनि के समय भी यह शब्दपरम्परा अविच्छिन्न रूप से मिलती है– इसी आधार पर पाणिनि ने – स्त्रीभ्यो ढक् – अ० 4–1–120 यह प्रत्ययविधायक नियम बनाया है।

✸ ऋषिवाचक – मण्डूक शब्द से अपत्यार्थ में विकल्प से यह प्रत्यय होता है।[60] माण्डूकेयः (मण्डूक ऋषि की सन्तान)

✸ काश्यप वंश विशिष्ट अपत्यार्थ में 'एय' प्रत्यय के दो उदाहरण प्राप्त होते है।[61] वैकर्णेयः (काश्यप वंश में उत्पन्न विकर्ण का पुत्र) कौषीतकेयः (काश्यप वंश में उत्पन्न कुषीतक का पुत्र)

✸ कुत्साविशिष्ट अपत्यार्थ में भी एक वैकल्पिक रूप मिलता है।[62] कौलटिनेयः (कुलटा स्त्री का पुत्र)

✸ पशु विशिष्ट अपत्यार्थ में[63] – कामण्डलेयः (चौपाये पशु विशेष का वच्चा)

---

[44] सहदेवनाम्नः राज्ञः पुत्रः कुमारः सोमकाभिधो राजा – ऋ०सा०भा० 4–15–7।
[45] अ० 4–1–151।
[46] कुर्वादिभ्योण्यः – अ० 4–1–151।
[47] गर्गादिभ्यो यञ् – अ० 4–1–105।
[48] अ० – 4–1–105।
[49] अ० – 4–1–137।
[50] अ० – 4–1–151।
[51] अ० – 4–1–169।
[52] अ० – 4–1–144।
[53] अ० – 4–1–145।
[54] अ० – 2–4–64।
[55] शतसंख्यकान् क्रतून्वनति संभजत इति शतवनिः। भृ०सा०भा० 1–59–7।
[56] स्त्रीभ्यो ढक् – अ० 4–1–120।
[57] वजिनेयो वाजिन्याः पुत्रो भरद्वाजः – ऋ०सा०भा० 6–26–2।
[58] निघ० 5–5–17।
[59] गृष्ट्यादिभ्यश्च – अ० 4–1–136।
[60] ढक् च मण्डूकात् – अ० 4–1–119।
[61] अ० – 4–1–124।
[62] अ० – 4–1–127।
[63] अ० – 4–1–135।

तद्राज, गोत्रार्थ तथा युवापत्यार्थ में ढक् प्रत्ययान्त रूपों का सर्वथा अभाव है।

आयन (फक्) प्रत्ययान्त अपत्यार्थक रूप

ऋग्वेद में 'आयन' प्रत्ययान्त अपत्यार्थक रूपों का सर्वथा अभाव है इस प्रत्यय का केवल एक रूप मिलता है।

काण्वायनाः (8–55–4) काण्वगोत्र में उत्पन्न प्रस्कण्व आदि ऋषियों का गोत्रनाम है। पाणिनि के अनुसार यह शब्द युवापत्यार्थक है क्योंकि गोत्र प्रत्ययान्त 'काण्व' शब्द से पुनः 'आयन' प्रत्यय युवापत्य अर्थ में हुआ है।[64]

√काण्व फक् = आयन – काण्वायनः (काण्व गोत्रात्पन्न – प्रस्कण्व)
(तुल० काण्वः (ऋ० 1–45–5) कण्व का गोत्रापत्य – प्रस्कण्व)।

'आयन' प्रत्ययान्त रूपों की ऋग्वेद में अनुपलब्धता से यह तथ्य सुस्पष्ट है कि यह प्रत्यय वैदिक काल में विकास की प्रारम्भिक अवस्था में था। पाणिनिकालीन भाषा में इसका पर्याप्त विकास हो गया था। अर्थ की दृष्टि से गोत्रापत्य व युवापत्य अर्थों में इसका प्रयोग हुआ है।[65] यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि युवापत्यार्थ के लिए एक मात्र 'आयन' प्रत्यय का प्रयोग हुआ है इसलिए इस प्रत्यय का यही प्रमुख अर्थ है। उदाहरण– गोत्रार्थ– नाडायनः (नड का गोत्रापत्य)। युवापत्यार्थ– हारितायनः (हरि का युवापत्य), गार्ग्यायणः (गर्ग का युवापत्य– प्रपौत्र), दाक्षायणः (दक्ष का प्रपौत्र)।

इस प्रकार ऋग्वैदिक अपत्यार्थक शब्दों का अर्थवैज्ञानिक दृष्टिकोण से परीक्षण करने पर यह विदित होता है कि ऋग्वैदिक काल से प्रारम्भ हुयी यह प्रक्रिया पाणिनि के समय तक न केवल अर्थ की अपितु रूपरचना की दृष्टि से भी विस्तृत हो चुकी थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायी सूत्रपाठ (पाणिनि)–गुरूकुल वृन्दावन स्नातक शोध, पीतमपुरा, दिल्ली, 2000।
2. ऋग्वेदसंहिता (मूल) – परोपकारिणी सभा, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, 1998।
3. ऋग्वेद (सायणभाष्य) – सम्पादक – मैक्समूलर, चौखम्भा संस्करण, वाराणसी, 1966।
4. कशिकावृत्ति – भाग प्प्ए प्ट – जयशंकरलाल त्रिपाठी, तारा बुक एजेन्सी, (न्यासपदमञ्जरीभावबोधिनीसहिता) कामाच्छा, वाराणसी, 1984।
5. व्याकरणमहाभाष्य (पतञ्जलि) – आचार्य मधुसूदन प्रसाद मिश्र चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1995
6. निरूक्त (यास्ककृत) भाग प्ए प्प – डॉ० चन्द्रमणि विद्यालंकार, गुरूकुल झज्जर, हरियाणा
7. वाक्यपदीयम् (भर्तृहरिकृत) – शिवशंकर अवस्थी, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1990।

[64] गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् – अ० – 4–1–94।

[65] अ० – 4–1–99, 100, 101, 102, 103, 110, 111।